गोपाचल का एक विस्मृत महाकवि-रइधू

डा० राजाराम जैन

भारतीय-वाङ्मय के उन्नयन में जिन वरेण्य साहित्यकारों ने अथक परिश्रम एवं अनवरत साधना करके अपना उल्लेख्य योगदान किया है, उनमें महाकवि रइधू अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। उनका अवतरण एक ऐसे समय में हुआ था जब राजनीतिक विषमताओं एवं युद्ध-विभीषिकाओं से जन-जीवन जर्जर हो रहा था, तलवारों और भालों की निरन्तर बौछारों से शान्ति भी शान्ति की खोज कर रही थी, तब रइधू ने जन-मानस की वेदना का अनुभव किया और एक लोकनायक कवि के रूप में अपनी अमृतस्रोतस्विनी को प्रवाहित किया। उनकी रचनाओं का विषय-वैविध्य, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी भाषाओं पर असाधारण पाण्डित्य, इतिहास एवं संस्कृति का तलस्पर्शी ज्ञान, समाज एवं राष्ट्र को साहित्य, संगीत, कला एवं राष्ट्र धर्म के प्रति जागरूक करने की क्षमता अन्यत्र दुर्लभ है।

महाकवि का निवास-स्थल

रइधू के जन्मस्थान एवं जन्मतिथि विषयक स्पष्ट उल्लेख अभी तक प्रकाश में नहीं आ सके। किन्तु इस तथ्य के प्रचुर प्रमाण उपलब्ध हैं कि कवि की साहित्य साधना का प्रमुख स्थल गोपाचल (ग्वालियर) दुर्ग था। उसने गोपाचल की महिमा का गान बड़े ही श्रद्धासमन्वित भाव से विस्तारपूर्वक किया है। उसके साहित्य में सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रसंगों में कई ऐसे वर्णन एवं शब्दावलियाँ प्राप्त हैं, जिनसे यही सिद्ध होता है कि उक्त कवि गोपाचल का निवासी था।[1]

काल-निर्णय

महाकवि का जन्म कब एवं किस वर्ष हुआ, यह जानकारी भी अभी तक अप्राप्त है, किन्तु कवि ने अपनी एक रचना 'सुक्कोसलचरिउ' की अन्त्य-प्रशस्ति में उसका रचना-समाप्ति काल वि० सं० 1496 दिया है[2] तथा उसमें अपनी पूर्ववर्त्ती कई रचनाओं के उल्लेख किये हैं एवं उन्हीं उल्लिखित रचनाओं की प्रशस्तियों में भी अपनी पूर्व-पूर्व-रचित रचनाओं के उल्लेख किये हैं, जिनकी संख्या 18 है। इससे विदित होता है कि कवि वि० सं० 1496 के पूर्व ही एक विशाल साहित्य का प्रणयन कर चुका था, क्योंकि वि० सं० 1496 के बाद ही उसकी मात्र पाँच रचनाएँ ही प्राप्त हैं। पूर्वोक्त 18 ग्रंथों के परिमाण को देखते हुए तथा उनके प्रथम गुरु गुणकीर्त्ति भट्टारक (वि० सं० 1455 के

1. रइधू-साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन (डा० राजाराम जैन) पृ० 44-45।
2. सुक्कोसलचरिउ 4/23/1-3

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आसपास) के समय को देखने से यह विदित होता है कि कवि का जन्मकाल वि० सं० 1440 के आसपास होना चाहिए। इसी प्रकार कवि ने अपनी रचनाओं में गोपाचल नरेश कीर्तिसिंह तोमर एवं भट्टारक शुभचन्द्र (माथुरगच्छ पुष्करगणीय) के उल्लेख विस्तार के साथ किए हैं, जिनका कि समय वि० सं० 1536 के आसपास है। इन उल्लेखों तथा अन्य तथ्यों से यह स्पष्ट विदित होता है कि कवि उक्त समय तक साहित्य साधना करता रहा और इस प्रकार उसका कुल जीवनकाल अनुमानतः वि० सं० 1440 से 1536 के मध्य तक प्रतीत होता है।[3]

वंश-परम्परा

रइधू-साहित्य की प्रशस्तियों में मधुकरी वृत्ति से उनकी पारिवारिक-परम्परा का परिचय मिल जाता है। उसके अनुसार कवि के पितामह का नाम संघाधिप देवराज तथा पिता का नाम हरिसिंह था और माता का नाम था विजयश्री। रइधू तीन भाई थे—बाहोल, माहणसिंह एवं रइधू। रइधू की पत्नी का नाम सावित्री था तथा पुत्र का नाम उदयराज।[4] कवि ने उदयराज के जन्म के दिन ही अपनी 'हरिवंशचरित' नामक रचना समाप्त की थी।

साहित्य साधना

महाकवि रइधू की साहित्य साधना गम्भीर विशाल एवं अद्भुत रही है। उन्होंने अपने जीवनकाल में तेईस से भी अधिक ग्रन्थों की रचना की, जिनकी भाषा प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी है। कई ग्रन्थों में अपने आश्रयदाताओं के प्रति आशीर्वचन सूचक संस्कृत श्लोकों की भी उन्होंने रचना की है। इन्हें देखकर प्रतीत होता है कि वे संस्कृत के भी अधिकारी विद्वान् थे। भारतीय वाङ्मय के इतिहास में इतने विशाल साहित्य का प्रणेता एवं प्रायः सभी प्रमुख प्राच्य-भाषाओं का जानकार अन्य दूसरा कवि ज्ञात नहीं होता। रइधू विरचित साहित्य की वर्गीकृत सूची निम्न प्रकार है :—

(क) चरित साहित्य

(1) हरिवंशचरिउ (14 सन्धियाँ एवं 302 कडवक तथा 14 संस्कृत श्लोक); (2) बलहद्दचरिउ (11 सं०, 240 कडवक एवं 11 सं० श्लोक) (3) मेहेसरचरिउ (13 सं०, 304 कडवक एवं 12 सं० श्लोक), (4) जसहरचरिउ (4 सं०, 104 कडवक, 4 सं० श्लोक); (5) सम्मइचरिउ (10 सं०, 246 कडवक एवं 10 सं० श्लोक); (6) तिसट्ठिमहा-पुराणपुरिसआयारगुणालंकारु (50 सन्धियाँ, 1357 कडवक); (7) सिरिसिरिवालचरिउ (10 सं०; 202 कडवक एवं 10 सं० श्लोक); (8) संतिणाहचरिउ (सचित्र, अपूर्ण, मात्र आठ सन्धियाँ ही प्राप्त हैं); (9) पासणाहचरिउ (7 सं. 137 कडवक 7 सं. श्लोक) (10) जिमंधरचरिउ (13 सं०, 301 कडवक तथा 13 सं० श्लोक); (11) सुक्कोसलचरिउ (4 सं०, 74 कड़वक एवं 4 सं० श्लोक); (12) धण्णकुमारचरिउ (4 सं०, 74 कडवक एवं 4 सं० श्लोक);

(ख) आचार एवं सिद्धान्त साहित्य

(13) सावयचरिउ (6 सं०, 125 कडवक); (14) पुण्णासवकहा (13 सं०, 250 कडवक), (15) सम्मत्तगुणणिहाणकव्व (4 सं०, 104 कडवक), (16) अप्पसंवोहकव्व (3 सं० 58, कडवक), (17) सिद्धन्तत्थसार (प्राकृत भाषा निवद्ध—13 अंक एवं 850 गाथाएँ); (19) वित्तसार (प्राकृत भाषा निबद्ध, 6 अंक, एवं 850 गाथाएं);

3. विशेष के लिए देखिए रइधू सा० का आ० परि० पृ० 116-120
4. वही, पृ० 35-40

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ग) अध्यात्म एवं अन्य साहित्य

(20) सोलहकारण जयमाला (27 पद्य); (21) दहलक्खणजयमाला (11 पद्य); (22) बारा-भावना (हिन्दी, 37 पद्य) ।

अन्य ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं । उक्त ग्रन्थों में से क्रमांक 8 एवं 9 के ग्रन्थ सचित्र हैं और मध्यकालीन चित्रकला के अद्भुत उदाहरण हैं ।[5] उपर्युक्त समस्त साहित्य अद्यावधि अप्रकाशित है ।

रइधू-साहित्य की विशेषताएँ प्रशस्तियाँ

रइधू-साहित्य की सर्वप्रथम विशेषता उसकी विस्तृत प्रशस्तियाँ हैं । कवि ने अपने प्रायः प्रत्येक ग्रन्थ के आदि एवं अन्त में विस्तृत प्रशस्तियाँ अंकित की हैं, जिनमें समकालीन राजा, नगरसेठ, पूर्ववर्त्ती एवं समकालीन साहित्य एवं साहित्यकार तथा अन्य राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों पर सुन्दर प्रकाश डाला है । इन प्रशस्तियों में गोपाचल के मध्यकालीन इतिहास एवं संस्कृति की प्रचुर प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध होती है ।

राजाओं में कवि ने समकालीन तोमरवंशी राजा डूंगरसिंह, कीर्तिसिंह एवं प्रतापरुद्र चौहान के उल्लेख करते हुए उनका विस्तृत परिचय एवं कार्यकलापों का सुन्दर वर्णन किया है । कवि के अनुसार उक्त तीनों राजा शूरवीर एवं पराक्रमी होने के साथ-साथ सर्व धर्म समन्वयी एवं साहित्य तथा कला-रसिक थे ।[6] गोपाचल दुर्ग में डूंगरसिंह एवं कीर्तिसिंह ने राज्य की ओर से श्रेष्ठ मूर्तिकला के विशेषज्ञों को निमन्त्रित कर लगातार

जसहरचरिउ (मौसमाबाद प्रति); सन्दर्भ—राजा यशोधर अपने मनोरंजन ग्रह में

5. सचित्र ग्रन्थों के परिचय की जानकारी हेतु हमारे द्वारा लिखित विस्तृत निबन्धों के लिए देखिए—जैन सिद्धान्त भास्कर (आरा) 25/2/62-69 (सचित्र जसहरचरिउ के लिए) अनुसन्धान-पत्रिका (जन०-मार्च) 1973) प्रवेशांक पृ० 50-57, (सचित्र पासणाहचरित्र के लिए) तथा रइधू सा० का आ० परि० पृष्ठ 551-552 (सचित्र सतिणाह चरिउ के लिए) ।

6. रइधू सा० का आ० परि० पृ० 95-116

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

33 वर्षों तक जैनमूर्तियों का निर्माण कराया था। जनरल कनिंघम ने उक्त मूर्तिकला से प्रभावित होकर लिखा है —[7]

The (Jaina) Rock Sculptures of Gwalior are unique in Northern India as well for their number as for their gigantic size.

प्रस्तुत प्रसंग में सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री हेमचन्द्रराय का निम्नकथन भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं :—

He (Dungar Singh) was a great patron of the Jaina faith and held the Jainas in high esteem. During his eventful reign, the work of carving Jaina images on the rocks of the Fort of Gwalior was taken in hand; it was brought to completion during the reigm of his successor Raja Karni Singh (or Kirti Singh). All around the base of the Fort, the magnificent Statues of the Jaina pontiffs antiquity gaze from their tall niches like mighty Guardians of the great Fort and its surrounding landscape. Babur was much annoyed by these rock-sculptures as to issue orders for their destruction in 1557 A. D.

सम्राट बाबर के मूर्ति तोड़नेवाले उक्त आदेश का जनरल कनिंघम ने अंग्रेजी अनुवाद इस प्रकार किया है —[8]

"They have hewn the solid rock of this Adiva and sculptured out of it idols of longer and smaller size. On the south part of it is a large size which may be about 40 feet in height. These figures are perfectly naked without even a rag to cover the parts of generation. Adiva is for from being a mean place. on the contarary, it is extremely pleasant. The greatee fault consists in the idol figures all about it. I directed these idols to be destroyed."

रइधू के अनुसार प्रतापरुद्र चौहान चन्द्रवाडपट्टन का राजा था, जिसने अपने पराक्रम से मुस्लिम आक्रान्ताओं के छक्के छुड़ा दिये थे और अपना राज्य विस्तार किया था। उसके राज्य में सभी धर्मों के लोग सौमनस्य एवं सौहार्दपूर्वक निवास करते थे। राज्य की समृद्धि अटूट थी। प्रतापरुद्र के एक अमात्य कुन्थुदास ने चन्द्रवाडपट्टन में हीरे, मोती, माणिक्य आदि की कई सुन्दर जैनमूर्तियाँ बनवाकर बड़े ही समारोह के साथ उनकी प्रतिष्ठा कराई थी।[9]

रइधू-साहित्य की प्रशस्तियों के अनुसार गोपाचल एवं चन्द्रवाडपट्टन में साहित्यकारों का सम्मान राज्य के सर्वश्रेष्ठ सम्मानों में श्रेष्ठतम माना जाता था। रइधू ने जब गोपाचल में 'सम्मत्तगुणणिहाणकव्व' नामक अपना काव्यग्रन्थ समाप्त किया था, तब कवि को उक्त ग्रन्थ के साथ ही ऐरावत के सदृश सुन्दर हाथी पर विराजमान कराकर नगर भर में घुमाया गया था।[10]

इसी प्रकार चन्द्रवाडपट्टन में जब कवि ने 'पुण्णसवकहा' नामक ग्रन्थ की समाप्ति की, तब

7. Murry's Northern India. Pages 381-2
8. Murry's Northern India. Pages 381-
9. पुण्णासव कहा 15/6/-11.
10. सम्मत्त गुण० 1/5/6-10.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अगले ही दिन उसे हाथी पर बैठाकर नगर परिक्रमा कराकर उसका राजकीय सम्मान किया गया था।[11]

उक्त घटनाओं से यह विदित होता है कि गोपाचल एवं चन्द्रवाडपट्टन की राज्य परम्पराएँ आदर्श थीं और सचमुच ही रइधू द्वारा उल्लिखित उक्त तीनों राजा सम्राट अशोक एवं राजर्षि कुमारपाल की कोटि में आते हैं।

भट्टारक

रइधू-साहित्य की प्रशस्तियों में कई भट्टारकों के उल्लेख मिलते हैं। इन भट्टारकों ने गोपाचल में सदैव ही साहित्यिक एवं सांस्कृतिक वातावरण उत्पन्न कर स्वस्थ-समाज के निर्माण में अमूल्य योगदान किया है। ब्रज एवं बुन्देली का जो भी साहित्य निर्मित हुआ, उसके लिये मूल प्रेरणा इन भट्टारकों से मिली। धार्मिक साधना के साथ-साथ इनमें संगठन की प्रवृत्ति भी अद्‌भुत थी। राजाओं एवं नगरसेठों को प्रभावित कर उनसे आर्थिक सहायता लेने में भी ये पटु थे। अतः साधन सम्पन्न होने के कारण ये नवीन-नवीन प्रतिभाओं की खोजकर उन्हें एकत्रित करते थे तथा वृत्ति आदि देकर उन्हें साहित्य के क्षेत्र में प्रशिक्षित करते थे। यही कारण है कि गोपाचल में वि० सं० 1440 से 1540 तक लगभग 100 वर्षों में जितना साहित्यिक कार्य हुआ है, उतना शायद ही अन्यत्र हुआ हो। इन सौ वर्षों में आक्रान्ताओं द्वारा पिछले वर्षों में साहित्य की जो होलियाँ जलाई गई थीं, तथा मूर्त्तियों का विध्वंस किया गया था, उसकी पूर्ति का अथक प्रयास किया गया।

रइधू-प्रशस्तियों में उल्लिखित भट्टारकों को दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—(1) रइधू-पूर्व-भट्टारक एवं (2) रइधू-समकालीन भट्टारक। पूर्ववर्ती भट्टारकों में देवसेनगणि, विमलसेन, धर्मसेन, भावसेन एवं सहस्त्रकीर्ति तथा समकालीन भट्टारकों में गुणकीर्ति यशःकीर्त्ति पाल्ह ब्रम्ह, खेमचन्द्र एवं कुमारसेन के नामोल्लेख मिलते हैं। ये सभी भट्टारक काष्ठासंघ माथुरगच्छ एवं पुष्करगण शाखा से सम्बन्ध रखते हैं।

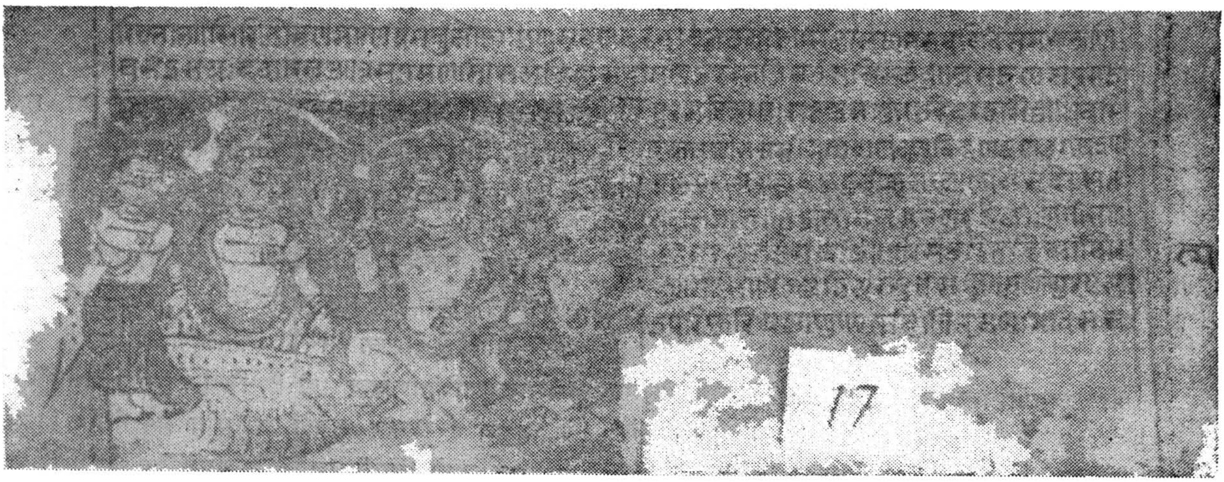

जसहरचरिउ; सन्दर्भ—राजा यशोधर अपने प्रमुख मंत्रियों से गम्भीर विचार विमर्श कर रहे हैं।
[**जसहरचरिउ, मौजमाबाद, जयपुर प्रति**]

11. पुण्णासवकहा 13/12/3.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन सभी भट्टारकों ने साहित्य एवं कला के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये ।[12]

भट्टारक शुभकीर्ति ने अपने गुरु भट्टारक कमल कीर्ति के आदेश से सुवर्णगिरि (आधुनिक सोनागिरि, झाँसी) पर एक भट्टारकीय पट्ट की स्थापना कर स्वयं ही उसका कार्य संचालन किया था तथा उसे प्राच्यविद्या का प्रमुख केन्द्र बनाया था । वहां के विशाल शास्त्र भण्डारों में आज भी महत्वपूर्ण सामग्री अपने प्रकाशन की राह देख रही है तथा कई ऐतिहासिक गुत्थियों को सुलझाने के लिए उत्कण्ठित है ।

भट्टारक कमलकीर्ति के एक अन्यतम शिष्य मण्डलाचार्य श्री रत्नकीर्ति ने वि० सं० 1516 में बड़वानी (बावनगजा-पश्चिम निमाड़) स्थित 84 फीट ऊँची आदिनाथ तीर्थंकर की मूर्ति के आसपास एक वसति का जीर्णोद्धार कराया था ।[13] ये उल्लेख वस्तुत: बड़े ही महत्वपूर्ण हैं और मध्यप्रदेश के पुरातत्व की समृद्धि के लिए अमूल्य निधि हैं ।

गोपाचल दुर्ग में स्थित 57 फीट ऊँची आदिनाथ की मूर्ति पर भी एक लेख अंकित है । स्व० श्री राजेन्द्रलाल हाड़ा ने कठोर परिश्रम कर उसका अध्ययन किया था, किन्तु महाकवि रइधू कृत सम्मतगुण-णिहाणकव्व की आद्यप्रशस्ति का अध्ययन एवं मूर्ति लेख से उसकी तुलना करने से श्री हाड़ा का अध्ययन पर्याप्त भ्रमपूर्ण सिद्ध होता है । उनके पठनानुसार मूर्ति लेख निम्न प्रकार है—

श्री आदिनाथायनमः । संवत् 1497 वर्षे वैशाष ··· 7 शुक्रे पुनर्वसुनक्षत्रे श्री 'गोपाचल दुर्गे' महाराजाधिराज श्री डुंग ····· संवर्तमानो श्री कांचीसंघे माथुरान्वयो पुस्करगण भट्टारक श्री गणकीर्ति देव तत्पदे यत्यःकीर्तिदेवा प्रतिष्ठाचार्य श्री पंडित रधू तेषं आमाए अग्रोतवंशे मोद्गल गोत्रासा ।। धुरात्मा तस्य पुत्रः साधु भोपा तस्या भार्या नाल्ही ।। पुत्र प्रथम साधु क्षेमसी द्वितीय साधु महाराजा तृतीय असराज चतुर्थ धनपाल पञ्चम साधु पाल्का । साधु क्षेमसी भार्या नोरादेवी पुत्र ज्येष्ठ पुत्र भधायि पति कौल···।। भ—भार्या च ज्येष्ठस्त्री सरसुती पुत्र मल्लिदास द्वितीय भार्या साध्वीसरा पुत्र चन्द्रपाल क्षेमसीपुत्र द्वितीया साधु श्री भोजराजा भार्या देवस्यपुत्र पूर्णपाल । एतेषां मध्येश्री ।। त्यादि जिनसंघाधिपति 'काला' सदा प्रणमति ।

उक्त लेख में रेखांकित पद विचारणीय हैं । यह तो सर्वविदित ही है कि गोपाचल (ग्वालियर) में वि० स० 1497 में तोमरवंशी राजा डूँगरसिंह का राज्य था । उनके समय में गोपाचल काष्ठासंघ माथुरान्वय एवं पुष्करगणीय भट्टारकों का गढ़ था । उनमें भट्टारक गुणकीर्ति के शिष्य यशःकीर्ति तथा उनके शिष्य महाकवि रइधू ने डूँगरसिंह के आग्रह से उनके दुर्ग में रहकर ही साहित्य साधना की थी । महाकवि के बालसखा एवं डूँगरसिंह के अमात्य कमलसिंह ने दुर्ग में 57 फीट ऊँची आदिनाथ की मूर्ति का निर्माण कराया था, जिसकी प्रतिष्ठा डूँगरसिंह की सहायता से कमलसिंह ने रइधू द्वारा कराई थी ।

उक्त वक्तव्य के रेखांकित पदों की, मूर्तिलेख के रेखांकित पदों से तुलना करने पर संगति ठीक ही बैठ जाती है । उक्त संगति का मूलाधार रइधू कृत 'सम्मत्तगुणणिहाणकव्व' ही है, जिसे रइधू ने कमलसिंह के आश्रय में रहकर उसके स्वाध्याय हेतु तैयार किया था तथा उसने उसकी प्रशस्ति में कमलसिंह का वंशवृक्ष,

12. विशेष के लिए देखिए रइधू, साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन पृ० 69-83.

13. दे० बड़वानी भित्तिलेख.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डूँगरसिंह का विस्तृत वर्णन एवं गोपाचल की राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का सुन्दर चित्र खींचा है। मूर्तिलेख में अंकित सामग्री निम्न प्रशस्ति में द्रष्टव्य है :—

गोपाचलि डुंगरराय रज्जि।
सिव ऊसइणा विहिय कज्जि ।।

तहि णिव सम्माणें तोसियंगु।
बुहयणहँ बिहिउ जं णिच्च संगु ।।

करुणावल्ली वण-धवल-कंदु ।
सिरि अइरवाल-कुल-कुमुय चंदु ।।

सिरि भोपाणामें हुवउ साहु ।
संपत्तु जेण धम्में जिलाहु ।।

तहु णाल्हाही णामेण भज्ज ।
अइसावहाण सा पुण्णकज्ज ।।

तहुणंदण चारि गुणोह वास ।
ससिणिह जसभर पूरिय दिसास ।।

खेमसीहु पसिद्धउ महि गरिट्ठु ।
महराजु महामइ तहु कणिट्ठु ।।

असराज दुहिय जण आसऊर ।
पाल्हा कुल-कमल-वियास सुरु ।।

एयहु गरुवउ जो खेमसीहु ।
वणियउ एच्छ भवभमण वीहु ।।

तहु णिउरादे भामिणि पउत्त ।
गुरु-देव-सच्छ-पय-कमल-भत्त ।।

तहि उवरि उवण्ण विणिणपुत्त ।
विण्णाण-कला-गुण-सेणि जुत्त ।।

पढमउ संघाहिवउ कमलसीहु ।
जो पयलु महीयलि सिवसमीहु ।।

णामेण सरासइ तहु कलत्त ।
वीई जि ससिपिय पाय भत्त ।।

चउविह दाणें पीणिय सुपत्त ।
अहणिसु विरइय जिणणाहजत्त ।।

तहुणदणु णामें मल्लिदासु ।
सो सपत्तउ सुहगइ णिवासु ।।

संघाहिव कमलहु लहुउ भाउ ।
णामेण पसिद्धउ भोयराउ ।।

तहु भामिणि देवइ णाम उत्त ।
विहु पुत्तहिं सा सोहइ सउत्त ।।

णामेण भणिउ गुरु चंदसेणु ।
पुणु पुण्णपालु लहुवउ अरेणु ।।

घत्ता

इय परियण जुत्तउ एच्छणिरु ।
कमलसीहु संघाहिव चिरणंदउ ।।

एच्छु पसणु मणु णिहय ।
दुहिय जण आइ ······ ।।

सम्मत० 4/35

इस प्रकार महाकवि रइधू के 'सम्मतगुण-णिहाणकव्व' की प्रशस्ति को सम्मुख रखकर उक्त मूर्ति-लेख के अशुद्ध पढ़े गये पाठों को सरलता से शुद्ध किया जा सकता है।

गोपाचल के श्रेष्ठिजन

रइधू ने अपनी प्रशस्तियों में प्रसंगवश कई नगर श्रेष्ठियों की विस्तृत चर्चा की है। इनमें से कुछ श्रेष्ठिजन रइधू की कवित्वशक्ति से अत्यन्त प्रभावित होकर उन्हें अपना गुरु मानकर चलते थे तथा वे निरन्तर ही अपने स्वाध्याय हेतु उनसे काव्यग्रन्थ लिखने का आग्रह-भरा निवेदन किया करते थे। यहाँ दो-एक उदाहरण प्रस्तुत कर यह दर्शाने का प्रयास किया जायगा कि मध्यकालीन नगर श्रेष्ठिजन ऐश्वर्य और भोगों के बीच रहते हुए भी कितने साहित्य-रसिक एवं साहित्यकारों को मुकुटमणि के समान समझते थे। कवि रइधू के एक भक्त थे— कमलसिंह संघवी, जो तोमर राजा डूँगरसिंह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के अमात्य थे तथा ऐश्वर्य में किसी भी राजा से कम न थे। वे कवि से कहते हैं "हे कविवर, शयनासन, हाथी, घोड़े, ध्वजा, छत्र, चमर, सुन्दर-सुन्दर रानियाँ, रथ, सेना, सोना-चाँदी, धन-धान्य, भवन, सम्पत्ति, कोष, नगर, देश, ग्राम, बन्धु-बान्धव, सुन्दर सन्तान, पुत्र, भाई, आदि सभी मुझे उपलब्ध हैं। सौभाग्य से किसी भी प्रकार की भौतिक-सामग्री की मुझे कमी नहीं, किन्तु इतना सब होने पर भी एक वस्तु का अभाव मुझे निरन्तर खटकता रहता है, और वह यह कि मेरे पास काव्यरूपी एक भी सुन्दर मणि नहीं है। उसके बिना मेरा सारा ऐश्वर्य फीका-फीका लगता है। हे काव्यरूपी रत्नों के रत्नाकर, तुम तो मेरे स्नेही बालमित्र हो, तुम्हीं हमारे सच्चे पुण्य-सहायक हो। मेरे मन की इच्छा को पूर्ण करनेवाले हो। इस नगर में बहुत से विद्वज्जन रहते हैं, किन्तु मुझे आप जैसा कोई भी अन्य सुकवि नहीं दिखता। अतः हे कविश्रेष्ठ, मैं अपने हृदय की गाँठ खोलकर आपसे सच-सच कह रहा हूँ कि आप मेरे निमित्त एक काव्य की रचना कर मुझ पर अपनी महती

रईधूकृत पासणाह चरिउ प्रतिलिपि काल — वि० स० १४९३

सन्दर्भ — राजा अरविन्द अपने मन्त्री वायुभूति से उसके भाई कमठ के चरित्र के विषय में पूछ रहा है तथा कमठ को तत्काल ही देश निर्वासन की सलाह कर रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृपा कीजिए।[14] कवि रइधू ने कमलसिंह की यह मार्मिक-प्रार्थना स्वीकार कर उसके निमित्त 'सम्मतगुण-णिहाणकव्व' नामक एक काव्य-ग्रन्थ की रचना करदी।

महाकवि का एक दूसरा भक्त था हरिसिंह साहू। उसकी तीव्र इच्छा थी कि उसका नाम चन्द्र विमान में लिखा जाय। अत: वह कवि से निवेदन करता है—"हे मित्र, मुझ पर अनुरागी बनकर मेरी विनती सुन लीजिए एवं मेरे द्वारा इच्छित 'बलभद्र चरित' नामक रचना लिखकर मेरा नाम चन्द्र-विमान में अंकित करा दीजिए।"[15] हरिसिंह की यह प्रार्थना सुनकर कवि ने कई कारणों से अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए तथा 'बलभद्र चरित' की विशालता का अनुभव करते हुए उत्तर दिया :—

घणएण भरइ को उवहि-तोउ।
को फणि-सिरमणि पयडइ विणोउ॥
पंचाणण-मुहि को खिवइ हत्थु।
विणु सुत्तें महि को रयइ वत्थु॥
विणु-बुद्धिए तहँ कव्वहँ पसारु।
विरएप्पिणु गच्छमि केम पारु॥

बलभद्र० 1/4/1.4

अर्थात्—"हे भाई, बलभद्र-चरित का लिखना सरल कार्य नहीं। उसके लिखने के लिए महान् साधना, क्षमता एवं शक्ति की आवश्यकता है। आप ही बताइये कि भला घड़े में समस्त समुद्र-जल को कोई भर सकता है? सांप के सिर से मणि को कोई ले सकता है? प्रज्ज्वलित पंचाग्नि में कोई अपना हाथ डाल सकता है? बिना धागे से रत्नों की माला कोई गूँथ सकता है? बिना बुद्धि के इस विशाल काव्य की रचना करने में मैं कैसे पार पा सकूँगा?"

उक्त प्रकार से उत्तर देकर कवि ने साहू की बात को सम्भवत: टाल देना चाहा, किन्तु साहू बड़ा चतुर था। अत: ऐसे अवसर पर उसने वणिक्बुद्धि से कार्य किया। उसने कवि को अपनी पूर्व-मैत्री का स्मरण दिलाते हुए कहा: "कविवर, आप तो निर्दोष काव्य रचना में धुरन्धर हैं, शास्त्रार्थ आदि में निपुण हैं, आपके श्री मुख में तो सरस्वती का वास है। आप काव्य-प्रणयन में पूर्ण समर्थ हैं, अत: इच्छित-ग्रन्थ की रचना अवश्य ही करने की कृपा कीजिए।"[16] अन्तत: कवि ने उक्त ग्रन्थ की रचना करदी।

रइधू-साहित्य में वर्णित गोपाचल

रइधू-साहित्य में गोपाचल का बड़ा ही समृद्ध वर्णन मिलता है। कवि ने उसकी उपमा स्वर्गपुरी, इन्द्रपुरी, एवं कुबेरपुरी से दी है, किन्तु प्रतीत होता है कि उसे इस तुलना से भी सन्तोष नहीं है, क्योंकि एक सन्त कहाकवि की दृष्टि में ज्ञान एवं गुरू ही सर्वोपरि होते हैं, भौतिक समृद्धि तो उनके समक्ष नगण्य है। अत: वह गोपाचल को 'नगरों का गुरू' अथवा 'पण्डित' घोषित करता है। वह कहता है:—

महिवीढि पहाणउँ णं गिरिराणउँ।
सुरहँ वि मणि विंभउ जणिउँ॥
कउसीसहँ मंडिउ णं इहु।
पंडिउ गोवायलु णामें भणिउँ॥

14. सम्मतगुण० 1/15/1-6.
15. बलहद्दचरिउ 1/4/6-12.
16. बलहद्द० 1/5/5-6.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पास० 1/2/15-16

अर्थात् "पृथ्वी-मण्डल में प्रधान, गिरिराज (सुमेरु) के समान विशाल, देवताओं के मन में भी विस्मय उत्पन्न करनेवाला, भवन-शिखरों से मण्डित तथा पृथ्वी-मण्डल के श्रेष्ठ पण्डित के समान गोपाचल नामक एक नगर कहा गया है।"

सुहलच्छि जसयरु ण रयणायरु।
बुहयण जुहु णं इंदउरु ॥
सत्थत्थहिँ सोहिउ जणमणु।
मोहिउ णं वरणयरहँ एहु गुरु ॥

वही 1/3/17-18

अर्थात् "सुख-समृद्धि एवं यश के लिए वह गोपाचल रत्नाकर के समान आकर था, बुधजनों के समूहों से युक्त वह नगर मानों इन्द्रपुरी ही था। शास्त्रार्थों से सुशोभित तथा जन-मन को आकर्षित करनेवाले सर्व-श्रेष्ठ नगरों का मानों यह गुरू ही था।"

वहाँ के सामाजिक-जीवन का भी वह सुन्दर वर्णन करता है। कवि के अनुसार वहाँ के आबाल-वृद्ध, नर-नारी दुर्व्यसनों से कोसों दूर थे। प्रातःकालीन क्रियाओं से निवृत्त होकर वहाँ की नारियाँ सुन्दर वस्त्र धारणकर

महाकवि रईधूकृत अपभ्रंश का एक अद्यावधि अप्रकाशित दुर्लभ ग्रन्थ, "निसट्ठि महापुराणपुरिस आयार-गुणालंकारु" के अन्तिम पृष्ठ की फोटो कापी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पवित्र मन से प्रभाती-गीत गाती हुई जब देवालयों की ओर जाती थीं, तब नगर का सारा वातावरण सात्विक एवं धर्म-महिमापूर्ण हो जाता था। कुलवधुएँ सत्पात्रों को भोजन कराए बिना भोजन नहीं करती थीं, तथा दीन-दुखी एवं अनाथों के प्रति वे निरन्तर दयालु रहती थीं।[17]

एक ओर जहाँ रइधू-वर्णित महिलाएँ इतनी उदार थीं, वहीं दूसरी ओर धर्म-विरुद्ध कार्यों का घोर विरोध करनेवाली, सत्साहसी एवं वीरांगनाएँ भी वहाँ थीं। कवि ने अपने 'सिरिसिरि-वालकहा' नामक ग्रन्थ में उज्जयिनी की राजकुमारी मयणासुन्दरी का उल्लेख करते हुए बताया है कि राजा प्रभुपाल ने किस प्रकार मयणासुन्दरी की कला-विद्याओं की कुशलता से प्रसन्न होकर उसे स्वयं ही अपने योग्य वर के चुनाव कर लेने का आदेश दिया।[18] किन्तु मयणासुन्दरी इसे भारतीय-परम्परा के विपरीत होने के कारण आपत्तिजनक मानकर उसका घोर विरोध करती है। कवि ने इस प्रसग की चर्चा पर्याप्त विस्तार के साथ की है। प्रतीत होता है कि मयणासुन्दरी के माध्यम से कवि ने वहाँ के नारी वर्ग के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलियाँ अर्पित की हैं।

उक्त प्रसग के अनुसार पिता के विवाह सम्बन्धी प्रस्ताव सुनकर मयणासुन्दरी विचार करती है:—

कुलमग्गु ण याणइ अलियभासि।
नियगेह् आणइ अवजसह्-रसिरा॥

सिरिवाल० 2/4/8

अर्थात् यह (मेरा पिता) कुल-परम्पराओं को जानता नहीं, वह असत्यभाषी है और अब अपने घर में अपयशों को ला रहा है।

जिह मइमत्तु गइंदु णिरंकुसु।
जं भावइ तं बोलइ जिह सिसु॥
जायंधु वि जह मग्गु ण जाणइ।
चउदिसु धाणमाणु दुहु माणइ॥
तिहि राणउ लज्जा मेल्लिवि।
जं रुच्चइ तं चवइ उवेल्लिवि॥

वही० 2/5/8-11

अर्थात् "जिस प्रकार मदोन्मत्त हाथी निरंकुश हो जाता है, उसी प्रकार हमारा पिता भी निरंकुश हो गया है। अज्ञानी बच्चों के समान ही जो मन में आता है, सो बोलता है। जिस प्रकार जन्मान्ध व्यक्ति मार्ग नहीं जानता और चारों दिशाओं में दौड़ता हुआ दुःख-भाजक बनता है, ठीक उसी प्रकार यह भी मान-मर्यादा छोड़कर जो मन में आता है, वही करता है और बोलता है।" इसके बाद वह अपने पिता को निर्भीकता के साथ उत्तर देती हुई कहती है:—

भो ताय-ताय-पइँ णिरु अजुत्तु।
जंपियउ ण मुणियउ जिणहु सुत्तु॥
वर-कुलि उवण्ण जा कण्ण होइ।
सालज्ज ण मेल्लइ एच्छ लोय॥
वादाववाउ नउ जुत्तु ताउ।
तहँ पुणु तुअ अक्खवमि णिसुणि राउ।
विहु-लोय-विरुद्धउ एहु कम्मु।
जं सुव सइंवरु णिण्हइ सुछम्मु॥
पइँ मण इच्छइ किज्जइ विवाहु।
तो लोय सुहिल्लउ इय पवाहु॥

वही० 2/6/5

अर्थात् "हे पिताजी, आपने जिनागम-सूत्रों के विरुद्ध ही मुझे अपने आप पति के चुनाव कर लेने का

17. सम्मत्तगुण० 1/4.
18. सिरिवाल० 2/4/5.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदेश दिया है। किन्तु जो कन्याएँ कुलीन होती हैं, वे कभी भी ऐसा निर्लज्जता का कार्य नहीं कर सकतीं। हे पिताजी, इस विषय में मैं वाद-विवाद नहीं करना चाहती। इसलिए, मेरी प्रार्थना ध्यानपूर्वक सुनें। आपका यह कार्य लोक-विरुद्ध होगा कि आपकी कन्या स्वयंवर करके अपने पति का निर्वाचन करे। अतः मुझसे कहे बिना ही आपकी इच्छा जहाँ हो, वहीं पर मेरा विवाह कर दें......

भरत वाक्य

रइधू-साहित्य की यह विशेषता है कि उसके प्रायः सभी ग्रन्थों में विस्तृत भरत-वाक्य भी उपलब्ध होते हैं। उनके मूल में कवि के अन्तस् का उज्ज्वल रूप ही प्रतिभाषित होता है। कवि-हृदय लोकमंगल की कामना से ओतप्रोत है। उसकी अभिलाषा है कि राजा कल्याण-मित्र बने, प्रजा उसे अपना पिता समझे, राजा भी उसे अपनी सन्तति के समान स्नेह करे। समस्त आधियाँ एवं व्याधियाँ नष्ट हों। ऋतुएँ समयानुसार सुफल दें। सर्वत्र सुख-सन्तोष एवं शान्ति का साम्राज्य हो। कवि कहता है :—

णिरुद्दउ णिवसउ सयलुदेसु।
पयपालउ णंदउ पुणु णरेसु॥
जिणसासणु णंदउ दोसमुक्कु।
मुणिगण णंदउ तहिँ विसय-चुक्कु॥
णंदहु सावययण गलियपाव।
जेणिसुणहिँ जीवाजीव भाव॥
णंदउ महि णिरसिय असुहुकम्मु।
जो जीवदयावरु परमधम्मु॥ ..

घत्ता

मच्छरमयहीणउँ सत्थपवीणउँ।
पंडिययणु णंदउ सुचिरु॥
परमुण गहणायरु वयणियभायरु।
जिणपयपयरुह णविय सिरु॥

पास० 7/11

अर्थात् "सम्पूर्ण देश उपद्रवों से रहित रहे, नरेश प्रजा का पालन करता हुआ आनन्दित रहे। जिन-शासन फले-फूले। निर्दोष मुनिगण विषय-वासना से दूर रहकर आनन्दित रहें। जो श्रावकगण जीव-अजीव आदि पदार्थों का श्रवण करते हैं, वे पापरहित होकर आनन्द से रहें।"

दूसरों के गुण ग्रहण करनेवाले, व्रत एवं नियमों का आचरण करनेवाले, मात्सर्य-मद से रहित एवं शास्त्र में प्रवीण पण्डितगण चिरकाल तक आनन्द करें एवं सभी जन जिनेन्द्र के चरण-कमलों में नत-मस्तक रहें।"

रइधू-साहित्य में प्रयुक्त आधुनिक भारतीय भाषाओं के शब्द

महाकवि रइधू यद्यपि मूलतः अपभ्रंश कवि हैं किन्तु उनके साहित्य में ऐसी शब्दावलियाँ भी प्रयुक्त हैं जो आधुनिक भारतीय भाषाओं की शब्दावलियों से समकक्षता रखती हैं। उदाहरणस्वरूप यहाँ कुछ शब्दों को प्रस्तुत किया जाता है :—

टोपी (जसहर० 1/5/7), ढोर (अप्प० 1/4/2), चोजु (आश्चर्य, सुक्को० 1/6/3), साला-साली (अप्प० 3/4/2), रसोइ (सुक्को० 4/5) गड्डी=गाड़ी, (धण्ण० 2/7), गाली (अप्प० 1/8), जंगल (अप्प० 2/3/1), पोटली (धण्ण० 2/6/4), वुक्कड=बकरा—धण्ण० 2/7/5), थट्ट=भीड़ सम्मइ० 1/17/4—खट्ट=खाट—धण्ण० 2/14/8—सुत्त=सूतना=सोना, धण्ण० 3/15/3), पटवारी (धण्ण० 4/20/5), वक्कल=बकला=छिलका—सुक्को० 2/5/12), ढिल्ल=ढीला—अप्प० 1/12/6), पुराना (अप्प० 1/19/3), झूठे=झगड़े (अप्प० 1/20/5), अंगोछा=धोती, (सम्मत्त० 5/10/13) मुग्गदालि=मूंग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की दाल (हरिवंश० 4/7/8), पौड़ा=गन्ना, (पास० 6/1/6) लइगउ=लेगया (अप्प० 3-8-10) मामा मामा (हरिवंस० 4/8/6), कप्पड़=कपड़ा (अप्प० 1/12/5), पैज=प्रतिज्ञा, (पुण्ण० 3/4/7), कुकुर पुण्णा० (12/25/11) खाजा (पुण्णा० 1/10/5) अंथउ=सूर्थास्त पूर्व का भोजन, (पुण्णा० 12/3/4) चुल्लू (पुण्णा० 1/14/7), साँकल (पुण्णा० 1/3/4), मोल (पुण्णा 5/1/10), देहली (पुण्णा० 8/2/8), गला (पुण्णा० 13/4/12), तलवर=कोतवाल, (पुण्णा० 9/7/10) आदि ऐसे शब्द हैं, जो आज भी बुन्देली, बघेली, ब्रज, भोजपुरी, अवधी एवं पंजाबी में प्रयुक्त होते हैं।

रइधू साहित्य का महत्व

इस प्रकार महाकवि रइधू ने विविध भाषाओं एवं साहित्यिक-शैलियों में एक विशाल साहित्य रूपी भास्कर दीप को प्रज्वलित कर माँ भारती के श्रीचरणों को आलोकित किया है। उसने विविध आक्रमणों से जर्जर मालवभूमि के गिरते गौरव को अपनी समर्थ-लेखनी से उन्नतकर उसके पद को पुनः प्रतिष्ठित किया है तथा अन्धकार में विलीन होते हुए उसके कई ऐतिहासिक तथ्यों को अपनी प्रशस्तियों के माध्यम से प्रकाशित किया है। निःस्सन्देह ही रइधू-साहित्य मालव प्रदेश का ही नहीं समग्र भारतीय-वाङ्मय का भी एक स्वर्णिम अध्याय है। उसने शिक्षा जगत् का महान् उपकार किया है। अतः गोपाचल के इस वरेण्य कवि के अप्रकाशित साहित्य को प्रकाशदान देने से ही म० प्र० उसके ऋणों से उऋण हो सकेगा और इसी प्रकार रइधू के प्रति रचनात्मक समर्थ श्रद्धांजलियाँ भी समर्पित की जा सकेंगी।

☐ ☐

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org